International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 290-292

19वीं शताब्दी के पुनर्जागरण आन्दोलन में ईसाई मिशनरियों की भारतीय समाज में भूमिका

Dr. Sanjeet
Lecturer in History, Govt. Sr. Sec. School, Baniyani, District, Rohtak, Haryana, India

सारांश
वस्तुतः भारतीय पुनर्जागरण काल का भारतीय इतिहास में विशेष महत्व है तथा 19वीं शताब्दी में भारत के धार्मिक–सामाजिक सुधार आन्दोलनों में सहायक पश्चिमी सभ्यता के प्रचारकों में, ईसाई मिशनों व मिशनरियों का महत्वपूर्ण स्थान है जो भारतवासियों में अपने धर्म के प्रचार–प्रसार के आकांक्षी थे और उन्होंने प्रवचन, शिक्षण, चिकित्सा, संगठन और सेवा के माध्यम से यह कार्य सम्पन्न करने का प्रयास किया तथा परोक्ष रूप से सामाजिक जागृति, समानता एवं स्वतन्त्रता की भावनाओं के विकास में योगदान दिया। प्रस्तुत शोध पत्र में 19वीं सदी के पुनर्जागरण आन्दोलन में ईसाई मिशनरियों की भारतीय समाज में भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

मूलशब्द– भारतीय पुनर्जागरण, धर्म सुधार आन्दोलन, सामाजिक जागृति, ईसाई मिशनरी।

प्रस्तावना
चूंकि आधुनिक भारतीय सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलन बड़े अंशों में ईसाइयत की नैतिक चुनौती की प्रतिक्रिया तथा, ईसाई धर्म में प्राथमिक रूप से व्यक्त, मानव व्यक्ति की अवधारणा के प्रति अनुक्रिया के ही परिणाम रहे हैं।[1] 18वीं शताब्दी में भारत पतनोन्मुख था। धार्मिक जीवन में क्षरण और विघटन अत्यन्त आघातकारी रूप में प्रकट हो रहा था। जनप्रचलित हिन्दू धर्म अपने नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से वंचितप्राय था। समाज एवं धर्म में अन्धविश्वास, पाखण्ड, कुरीतियों, कुप्रथाओं का बोलबाला था। उपनिषद्, गीता आदि में प्रतिपादित सत्य धर्म से विमुख होकर भारतीय समाज दुर्बल, अशक्त, असहाय बन गया था। भारतीय आत्मविश्वास एवं आत्मगौरव से हीन हो चले थे। इसी समय विदेशी शक्तियों तथा ईसाई धर्म प्रचारकों का भारत में प्रवेश हुआ।[2] पूर्वी जगत के विभिन्न भागों में अपने धर्म का आरोपण करने में सफल ईसाई मिशनरियों के लिए भारतीय एक उर्वर क्षेत्र था। नवीन, सबल एवं उत्साही समाज एवं संस्कृति के समक्ष भारतीय ठहर न सके। धर्म न सही, पश्चिमी संस्कृति से वे अवश्य अभिभूत हो चले जिससे भारतीय धर्म व संस्कृति के लोप की आशंका सी होने लगी। अपने पिता को एक पत्र में मैकाले ने लिखा था कि जिस भारतीय (हिन्दू) ने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर ली वह वास्तव में अपने धर्म के प्रति निष्ठावान् नहीं रहता।[3]

भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से ही ईसाई मतावलम्बियों का आगमन होने लगा था। आधुनिक काल में सर्वप्रथम जेसुइट मिशनरियों का आगमन हुआ जो गुप्त रूप से धर्म परिवर्तन आदि का कार्य करते थे। भारत में धर्म प्रचार करने वाले मिशनरी संघों में तीन संघों के नाम अत्यंत उल्लेखनीय है। सर्वप्रथम 16वीं शताब्दी में पुर्तगाल मिशन का आगमन हुआ, फिर 17वीं शताब्दी में इटली वालों का दल पहुँचा और अन्त में 18वीं शताब्दी में, डेनमार्क के मिशनरी भी भारत में धर्म प्रचार का कार्य करने लगे। डचों ने भी धर्म व राजनीति के क्षेत्र में विशेष सक्रियता प्रदर्शित की जब कि फ्रांसीसियों ने अपना ध्यान व्यापार एवं राजनीति पर केन्द्रित किया।[4] मिशनरी दक्षिण भारत में विशेष रूप से सक्रिय थे। किन्तु लम्बे समय तक प्रयत्नों के बाद भी उन्हें विशेष सफलता नहीं मिल सकी। पुर्तगाली मिशनरी सेंट फ्रांसिस जैवियर को यही अनुभव हुआ कि यहाँ के लोग ईसा की शरण में जाने के उपदेश को मृत्यु की शरण में जाने का उपदेश मानते थे।

इसके साथ–साथ बंगाल में सर्वाधिक प्रारम्भिक मिशनरियों में पुर्तगालों रोमन कैथोलिक मिशनरी जो विशेष रूप से पूर्वी बंगाल में सक्रिय थे, धर्म परिवर्तन सम्बन्धी अपने कार्य में सुविधा के ध्येय से उन्होंने बंगाल गद्य का विकास किया– यद्यपि भाषा के विकास पर उनके कार्यों का अत्यल्प प्रभाव पड़ा जिस कारण उनका ऐतिहासिक महत्व नगण्य ही रहा।[5]

1813ई तक मिशनरियों ने निजी रूप से ही कार्य जारी रखा। 18वीं शताब्दी के अन्तिम दशक विलियम केरी, जेशुआ माशमैन और विलियम वार्ड ने सिरामपुर (डेनमार्क वालों की बस्ती) को अपनी धार्मिक गतिविधियों का केन्द्र बनाया। धीरे–धीरे उनका प्रभाव कलकत्ता तक फैलने लगा। 18वीं शताब्दी के आठवें दशक के पश्चात् भारत में वातावरण ईसाई धर्म के प्रचार के अनुकूल था। बंगाल के 1770ई0 के दुर्भिक्ष ने, जिस सरकार से कर–संग्रहकों की लोलुपता ने और अधिक कष्ठ कारक बना दिया था, स्थानीय जनता की नैतिक अधोगति के साथ मिलकर ईसाई मिशनरियों के कार्यकलापों के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान किया, किन्तु कम्पनी की नीति तथा अन्य कारणो से उनकी विशेष प्रगति नहीं हुई भारत में अपने शासन के प्रारम्भिक दिनों में ब्रिटिश पूंजीपतियों को इस देश ईसाईयों की संख्या बढाने से अधिक दिलचस्पी अपने लाभ में थी। कम्पनी ने न तो आधुनिक शिक्षा और समाज सुधारों को और न ईसाई धर्म प्रचारकों को ही प्रोत्साहित किया। उसने देशी परम्पराओं और धार्मिक रीति–रिवाजों में हस्तक्षेप न करने की नीति अपनायी। मिशनरियों को आशंक और कठोर विरोधपूर्ण रूख का

[1] वीरकेश्वर प्रसाद सिंहः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास, ज्ञानंदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ0 80–82.
[2] शैलेन्द्र प्रसाद पांथरी, आधुनिक भारतीय नवजागरण, स्वराज प्रकाशन, 1994, पृ0 68–69.
[3] वही, पृ0 69–70.
[4] रविन्द्र कुमार' आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, 1997, पृ0 16–17
[5] विपिन चन्द्र (सं.): आधुनिक भारत, अनामिका पब्लिशर्स एंड हिस्ट्री ब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000, पृ0 62–63.

सामना करना पड़ा। मिशनरियों को प्रोत्साहन देने से भारतीय व्यापार एवं साम्राज्य के संकटापन्न होने की आशंका थी। कलैफाम पन्थ के भारी दबाव के बावजूद 1793 के चार्टर एक्ट में भारतीयों के सामाजिक–नैतिक उत्थान से सम्बन्धित धारा शामिल नहीं की गई। आगे चलकर नीति में उल्लेखनीय परिवर्तन आया। चर्च के दबाव में फलस्वरूप ब्रिटिश संसद को अपनी प्रजा के नैतिक उत्थान में पहले करने का वचन देना पड़ा। इसमें मिशनरी उनकी सहायता करते। दूरदर्शी राजनीतिज्ञ भारत के बाजारों को विकसित करने के लिए आधुनिक शिक्षा तथा समाज सुधारों को लागू करना आवश्यक मानने लगे।[6]

18वीं शताब्दी के अन्त तक ईसाई धर्म की प्रगति प्रधानतः इंग्लैण्ड के एस.पी.सी. के, निधि के समर्थन से, डेनमार्क और जर्मनी के प्रोटेस्टेण्ट मिशनरियों के माध्यम से ही, विशेष रूप से दक्षिण भारत में हुई। 1813 के चार्टर एक्ट के बाद मिशनरियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। यूरोपीय मिशनरियों के साथ ही अमेरिकी मिशनरी भी यहाँ आने लगे व सक्रिय होने लगे। 1833 में कम्पनी से अनुमति प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रही। 1835 में प्रतिपादित शिक्षा नीति से उन्हें उल्लेखनीय सहायता मिली। धीरे–धीरे ईसाई मिशनरी भारत के दूरस्थ क्षेत्रों में प्रविष्ट होते गये और उनके माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान, विचार तथा नैतिक दण्ड भी भारत में व्याप्त होते गये। धर्म प्रचार के निमित्त शिक्षण संस्थाओं, चिकित्सालयों, अनाथालयों, सेवागृहों आदि की स्थापना की गई। मिशन स्कूलों में बाईबल की शिक्षा अनिवार्य बना दी गई।

भारत सरकार का सहयोग भी मिशनरियों को प्राप्त हो गया। शासकों ने देखा कि ईसाई धर्म के माध्यम से भारतवासियों में साम्राज्य के प्रति आस्था तथा निष्ठा की भावना में वृद्धि की जा सकती थी तथा जनता के बीच लोकप्रियता बढ़ सकती थी। अतः धर्मपरिवर्तन करने वालों को अनेक प्रकार से प्रोत्साहित किया गया तथा उनकी आर्थिक स्थिति दुरूस्त करने हेतु उन्हें विशेष रियायतें, पदोन्नति आदि प्रदान की गई। सैनिक, असैनिक अधिकारियों से भी मिशनरियों को सहायता मिली। सरकारी कानून भी उनके सहायक थे और दैवी विपत्तियों ने भी उनका मार्ग प्रशस्त किया। बौर्ड ऑफ डायरेक्टर्स के अध्यक्ष मैंगल्स ने 1857 में ब्रिटिश पार्लियामेंट में कहा कि भाग्य ने इंग्लैंड को हिन्दुस्तान का विस्तृत साम्राज्य सौंपा है, ताकि ईसाईयत की पताका विजयोल्लास के साथ भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक फहराती रहे। बम्बई के एक प्रशासक ने भारत में ब्रिटिश शासन को सदृढ बनाने में मिशनरियों की भूमिका को अफसरों, न्यायधीशों और गवर्नरों की सेवाओं से कही अधिक मूल्यवान बताया। बंगाल के गवर्नर सर चार्ल्स इलिएट ने भारत में ब्रिटिश सत्ता को न्यायसंगत सिद्ध करने में मिशनरियों के गैर–सरकारी तथा मान्यतारहित कार्य की प्रशंसा की।[7]

किन्तु ईसाई धर्म के प्रसार की गति अत्यन्त मन्द थी क्योंकि उच्च वर्णों के हिन्दू अत्यल्प संख्या में ही धर्म परिवर्तन की ओर प्रवृत हुए। जात–पात के कठोर बन्धन, सम्पति विषयक अधिकारों के कानून, संयुक्त परिवार का बन्धन, अपना धर्म त्यागने के प्रति सहज अरूचि, इसके प्रमुख कारण थे। इसके अतिरिक्त भारतीयों के प्रति प्रदर्शित तिरस्कारपूर्ण रूख और साम्प्रदायिक वैमनस्य उत्पन्न करने की चेष्टा भी धर्म प्रचार के कार्य में बाधक थी।[8] मिशनरियों ने निर्भय भारतीय समाज एवं धर्मों की निन्दा आरम्भ कर दी। भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों–कुप्रथाओं को यहाँ के प्रमुख धर्मों से सम्बद्ध किया जाने लगा। हिन्दुत्व एवं इस्लाम पर खुलकर प्रहार किये गए। मिशनरी हिन्दू स्मृतियों को अस्पष्ट, भ्रामक तथा निरर्थक कहते थे। उनकी दृष्टि में हिन्दू धर्म भयानक प्रायश्चितों, व्यर्थ एवं हानिकार कर्मकाण्डों का भानुमती का पिटारा था और हिन्दू विद्या पूर्णतः विवेकशून्य थी। मिशनरियों का प्रचार था कि 'हिन्दू अपवित्र देवताओं के झुण्डों की मूर्तिपूजा करने वाले है, उनके काठ व पत्थर के बने देवता राक्षस के समान है, इनका सिद्धान्त झूठे, अनुष्ठान हास्यपद, संस्कार पतित करने वाले, पुराण मनगढन्त अथवा कपोलकल्पित और मान्यताएं पाखण्डमय है। ईसाई मिशनरियों ने हिन्दुओं की पूजा–पद्धति, आचार–विचार, बहुदेववाद, जात–पात स्त्रियों के प्रति व्यवहार आदि की तीव्र भर्त्सना की। भारतीय जीवन एवं विचारों पर कुछ मिशनरियों के विवेकरहित आक्रमण कभी–कभी इतने अमर्यादित एवं नृशंस हो जाते थे कि 19वीं शताब्दी के प्रथम दशक में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिण्टो ने इस आधार पर ईसाई प्रचार–पुस्तिकाओं को जब्त करने का आदेश जारी किया कि 'ये पुस्तिकायें किसी भी प्रकार के तर्क के बिना, नर्क जैसी अग्नि से बल्कि उसेस भी प्रचण्डतर अग्नि से मनुष्यों की एक पूरी जाति के विरूद्ध केवल इसलिए पूरित थी कि वे उस धर्म में विश्वास रखते थे, जो उन्हें उनके माता–पिता से मिला था तथा जिसके प्रति उनके मानस में संदेह उत्पन्न होना असम्भव है।[9] इमर्सन व नीत्शे जैसे पश्चिमी विद्वानों ने भी ईसाई मिशनरियों के कुकृत्यों की भर्त्सना की। इमर्सन का कहना था कि 'प्रत्येक स्टोईक (बैरागी) स्टोईक होता है, किन्तु ईसाई जगत में ईसाईयों की खोज पान अत्यन्त कठिन है।' नीत्शे ने कहा है कि संसार में केवल एक ही ईसाई था और वह क्रास पर चढ़ गया।

अंग्रेज शासक यद्यपि चरित्र व आचरण की दृष्टि से श्रेष्ठतर नही थे तथापि कुछ मिशनरियों ने धार्मिक सत्यनिष्ठा के उत्कृष्ट दृष्टान्त प्रस्तुत किये। धर्म प्रचार के निमित्त उन्होंने भारतीय भाषायें सीखी और भारतीयों को अंग्रेजी भाषा सीखने को उत्प्रेरित किया। विलियम केरी जैसे व्यक्तियों ने अंग्रेजी शिक्षा की नींव डाली। 1801 में केरी ने बंगला व्याकरण प्रकाशित किया। शब्दकोष तैयार किया गया। मार्शमैन ने भारत का इतिहास लिखा। सिरामपुर मिशनपुरियों ने प्रेस की स्थापना की यद्यपि इसका मूल उद्देश्य धार्मिक साहित्य का प्रकाशन करना था, तथापि ज्ञान के प्रसार में इसका महत्वपूर्ण योगदान था। प्रेस की स्थापना से पत्रकारिता को प्रोत्साहन मिला और साहित्य के विकास को भी।[10]

मिशनरियों ने बड़े जोश के साथ जातिप्रथा, अस्पृश्यता, बाल–विवाह, बालवधु आदि कुरीतियों एवं कुप्रथाओं के विरूद्ध आन्दोलन चलाया जिससे भारतीयों में भी सामाजिक चेतना जागृत हुई, यद्यपि प्रारम्भ में ईसाई धर्म ने भी जातिप्रथा के समक्ष घुटने टेक दिये और अनेक हिन्दु रीति–रिवाजों को अपनाया। ईसाई धर्म ग्रहण करने वालों में भी जातिगत ऊँच–नीच के भेदभाव के उदाहरण मिलते है। अंततः मिशनरियों के विविध कार्यों का भारतीय समाज व संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा। ईसाई धर्म के माध्यम से ही सर्वप्रथम भारतीय पश्चिमी सभ्यता–संस्कृति के सम्पर्क में आये जिसने भारत की सामाजिक परम्पराओं धर्म, कला, साहित्य, विचारधारा, रहन–सहन, वस्त्रभूषा, भोजन आदि सभी को प्रभावित किया। कुछ इतिहासकारों की सम्मति है कि ईसाई धर्म के प्रभाव से कोई नवीनता आने के बजाय पहले से विद्यमान ईश्वरवादी प्रवृत्तियों के तुष्ट होने में ही सहायता मिली। प्राच्य परम्परा के महत्वपूर्ण पक्षों के जीसस के उपदेशों की संगति ईसाइयत के प्रति आकर्षण का एक मुख्य कारण

[6] वीरकेश्वर प्रसाद सिंह,पूर्वोक्त, पृ0 82.

[7] एस.आर. देसाई, सोशल बैकग्राऊंड ऑफ इंडियन नैशनलिज्म, तीसरा संस्करण, बॉम्बे पॉपुलर डिपो, 1959, पृ0 20–22.

[8] शैलेन्द्र प्रसाद पान्थरी, पूर्वोक्त, पृ0 74.

[9] शैलेन्द्र प्रसाद पान्थरी, पूर्वोक्त, पृ0 74.

[10] एस.आर.देसाई, पूर्वोक्त, पृ0 24.

थी।[11]

मिशनरियों के प्रचारकार्य आदि से प्रभावित होकर बड़ी संख्या में भारतीय ईसाई धर्म व पश्चिमी सभ्यता–संस्कृति की ओर उन्मुख हुए और अपने देश धम व संस्कृति से घृणा करने लगे। इससे मिशनरियों को अपने धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का अवसर मिला। अंग्रेजी में तथा अनेक भारतीय भाषाओं में ईसाई धर्म से सम्बन्धित अनेक पुस्तकें तथा छोटी–छोटी पुस्तिकायें प्रकाशित की गई जिनका भारत के समाज सुधारकों पर गहरा प्रभाव पड़ा–एंजील में प्रतिपादित नैतिक शिक्षओं को एक ऐसे ईश्वर को उच्च तथा उदात्त अवधारणा के प्रति मानव मस्तिष्क को जागृत करने वाला मानते थे जिसने जात–पात, ओहदे और सम्पदा के भेदभाव के बिना, सभी प्राणियों को अपनी प्रजा माना है, जिसने परिवर्तन, निराशा, पीड़ा तथा मृत्यु सब में समान रूप से बांटी है, जिसने प्रकृति को प्रदत्त अपनी समस्त उदार सम्पदा का सबको भागीदार बनाया है और जिसने मानवमात्र को अपने ईश्वर, स्वयं अपने और अपने समाज के प्रति विविध कार्यों की पूर्ति की पूर्णक्षमता प्रदान की है।[12]

मिशनरी सक्रियता के फलस्वरूप भारतीय ईसाईयों का एक वर्ग पनपा जो, शिक्षा तथा राजनीतिक प्रभाव के बल पर, श्रेष्ठतर परिस्थिति के प्रति सचेतन था। इसकी प्रवृत्ति जाति के उच्छेदन की ओर सामाजिक गतिशीलता को आरम्भ करने की थी। दूसरी ओर, भारतीयों (हिन्दुओं) को अपने धर्म के वास्तविक स्वरूप के अन्वेषण की प्रेरणा भी प्राप्त हुई। मिशनरियों की अतिवादी विराधात्मक प्रवृति के फलस्वरूप हिन्दुओं मे जागृति आई। ईसाईयत व हिन्दुओं के बीच संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई। भारत की सुसुप्त आत्मा पुनः जागृत हो उठी और इससे भारतीय पुनर्जागरण आन्दोलन आरम्भ होने में सहायता मिली। ईसाई मिशनरियों आदि के आक्रमणों का समुचित प्रत्युत्तर दिया जाने लगा। स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, व श्रीमती ऐनी बेसेन्ट इनमें प्रमुख थे। 1895ई0 में शिकागो में आयोजित सर्वसम्मेलन में हिन्दू धर्म की व्याख्या से स्वामी विवेकानन्द ने विश्व को चकित कर दिया। ''न्यूयार्क हेराल्ड'' ने उन्हें सम्मेलन का सबसे महान व्यक्ति बताया और कहा कि – ऐसे ज्ञानी देश को सुधारने के लिए धर्मप्रचारक भेजना कितना मूखर्तातापूर्ण था, भारत में सक्रिय ईसाई मिशनरियों को चेतावनी देते हुए स्वामी, विवेकानन्द ने ईसा को, एशियाई और बाईबल की उपमाओं, चित्रों, दृश्यों, प्रवृतियों, प्रतीकों को भी पूर्व जगत से सम्बद्ध बताया। ईसाई धर्म व पाश्चात्य सभ्यता–संस्कृति की और उन्मुख भारतीय को भी उन्होंने चेतावनी दी।[13] इन समस्त प्रयत्नों के फलस्वरूप भारतीयों में अपने धर्म एवं संस्कृति की महानता के प्रति गौरव एवं सम्मान की भावना पनपने लगी साथ ही वे इनमें आ गयी बुराईयों को दूर करने की ओर भी प्रवृत हुए।

कुल मिलाकर, भारत पर ईसाईयत का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ां पणिक्कर के शब्दों में, ईसाई मिशनों को जिन्हें सहन किया जाता था, समर्थित नहीं, भारतीय जीवन पर कोई गम्भीर छाप अंकित करने में सफलता नहीं मिली। हिन्दू समाज के दलित वर्गों को छोड़कर सभी हिन्दुओं ने ईसाईयत के प्रचार–प्रसार के प्रयासों का प्रायः तीव्र विरोध किया।[16] भारतीयों की ईसाई धर्म की अच्छाईयों के प्रति आश्वस्त करके ईसाई धर्म के हितवर्द्धन के बजाय मिशनरियों ने उनकी निर्धनता का लाभ उठाकर ही उनके धर्मपरिवर्तन का प्रयास किया और इस प्रकार ईसाई धर्म ग्रहण करने वालों की संख्या को ही अपनी सफलता का मापदण्ड मान कर, इसकी प्रगति की गति को अवरूद्ध कर दिया।[14]

सारांश

चूंकि इस समय ईसाई धर्म का स्वयं पश्चिम में नवीन विज्ञान से संघर्ष (द्वन्द्व) चल रहा था तथा 17वीं, 18वीं. और 19वीं शताब्दी में तर्क बुद्धि के बाद सुस्थिर रूप से ईसाई पुराणशास्त्र को क्षीण बना रहा था। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि 19वीं शताब्दी में भूगर्भशास्त्र, प्राणिशास्त्र, तथा आगे चलकर नृतत्वशास्त्र आदि के क्षेत्र में वैज्ञानिक अन्वेषणों ने ईसाईयत की संरचना पर पूरी शक्ति से प्रहार किया और धर्मग्रन्थों की ऐतिहासिक समीक्षा (आलोचना) ने सुचारू रूप से उनकी प्रमाणिकता को क्षीण बनाया फिर भी ईसाई मिशनरियों की सक्रियता के कारण भारत में भारतीय ईसाईयों का एक ऐसा वर्ग पैदा हुआ जो शिक्षा तथा राजनीतिक प्रभाव के बल पर अधिक जागरूक था।

सन्दर्भ सूची

1. एस.आर. देसाई, सोशल बैकग्राऊंड ऑफ इंडियन नैशनलिज्म, तीसरा संस्करण, बॉम्बे पॉपुलर डिपो, 1959.
2. शैलेन्द्र प्रसाद पांथरी, आधुनिक भारतीय नवजागरण, स्वराज प्रकाशन, 1994.
3. सुमित सरकार, राइटिंग सोशल हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1997.
4. रविन्द्र कुमार' आधुनिक भारत का सामाजिक इतिहास, ग्रन्थ शिल्पी, नई दिल्ली, 1997.
5. विपिन चन्द्र (सं.): आधुनिक भारत, अनामिका पब्लिशर्स एंड हिस्ट्री ब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000.
6. वीरकेश्वर प्रसाद सिंहः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास, ज्ञानंदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.
7. शेखर बधोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, ओरियंट पब्लिकेशन ब्लैकस्वॉन, नया संस्करण, 2013.

[11] सुमित सरकार, राइटिंग सोशल हिस्ट्री, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, दिल्ली, 1997, पृ0 46–48.

[12] विपिन चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ0 86.

[13] शेखर बधोपाध्याय, प्लासी से विभाजन तक, ओरियंट पब्लिकेशन ब्लैकस्वॉन, नया संस्करण 2013, पृ0 150–151.

[14] शैलेन्द्र प्रसाद पान्थरी, पूर्वोक्त, पृ0 76.